जीवन की सोलह कलायें

किसी भी कार्य को करने का एक समय और ढंग होता है। पुनश्च,उस कार्य को यथोचित स्थान पर और अनुकूल अवसर पर एक व्यवस्थित रूप से करने के लिए भी एक विशेष सूझ-बूझ की आवश्यकता होती है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि हरेक कार्य को करना भी एक कला है। जैसे कोई कलाकार एक सूझ से काम करना जानता है, कौन-सा रंग कहाँ लगाना है, आँख, कान आदि को किस ढंग से बनाना है और किस व्यवस्था से सभी दृश्यों व हाव-भावों को किस प्रकार दिखाना है, ये रंग-ढंग, व्यवस्था और रूप-रेखा उसकी कला में शामिल हैं। इसी प्रकार जीवन भी एक कला है।

सभी जानते हैं कि किस प्रकार दोनों ओर लगी हुई बाँसों के बीच रस्सी बाँधकर नट उस रस्सी पर चढ़कर अपनी कला दिखाता है। उसका झुकाव रस्सी के न इस ओर अधिक होता है और न उस ओर, बल्कि वह अपना सन्तुलन कायम रखता है। यदि वह सन्तुलन न रखे तो उसका पतन हो जायेगा और वह चकनाचूर हो जायेगा और यदि वह कर्त्तव्य न दिखाये अथवा कोई करिश्मा न करे तो वह 'नट' भी नहीं कहलायेगा और अपनी आजीविका का साधन भी नहीं बना पायेगा। ठीक इसी प्रकार, यह जीवन भी एक कला है। मनुष्य अपने बाल-बच्चों के बीच रहे और उनसे उसका स्नेह भी हो परन्तु मोह न हो, वह धन कमाये परन्तु उसमें लोभ न हो, वह घर-गृहस्थ को चलाये परन्तु उसमें उसकी आसक्ति न हो इसके लिए भी एक सुन्दर रूप-रेखा, कर्त्तव्य निभाने का एक अच्छा रंग-ढंग, घर-बार की एक सुन्दर व्यवस्था और योजना होती है। इसलिए जीवन को भी एक 'कला' कहा जाता है।

मनुष्य के कार्य-व्यवहार को सुन्दर बनाने और जीवन को एक रंग-ढंग से चलाने वाला विज्ञान वास्तव में योग ही है। इसलिए योग को 'जीवन-कला' माना गया है अर्थात् मनुष्य जीये तो कैसे जीये, कार्य करे तो कैसे करे, इसकी सूझ योग रूपी विज्ञान ही देता है। देखा गया है कि जीवन को सफल अथवा श्रेष्ठ बनाने के लिए मुख्य रूप से सोलह कलायें हैं। योग, मनुष्य को इन सोलह कलाओं से सम्पन्न बनाता है। वे सोलह कलायें कौन-कौन-सी हैं और योग मनुष्य को उन कलाओं में प्रवीण कैसे बनाता है, अब इसका उल्लेख करेंगे।

1. सर्व को मित्र बनाने की कला

(The Art of Winning Friends)

दूसरों को मित्र बनाने की कला एक बहुत बड़ी कला है। बहुत-से लोग अपनी किसी-न-किसी कमी के कारण लोगों को शत्रु बना बैठते हैं और उसके परिणामस्वरूप मानसिक अशान्ति और दूसरों की दुश्मनी मोल ले लेते हैं। अब दूसरों को मित्र बनाने के लिए मनुष्य में मुख्य नौ बातों का होना आवश्यक है— (1) दूसरों के प्रति शुद्ध प्रेम (2) मिलनसार स्वभाव और स्वयं को ढालने की योग्यता (The quality of mixing and moulding) (3) सरल स्वभाव अथवा मन की सच्चाई और सफ़ाई (4) पवित्र और उच्च जीवन (5) शान्त स्वभाव, मधुरता और मान्यता का गुण (6) निकट सम्पर्क में आने का गुण (7) दूसरों की सेवा और सहायता के लिए सदा तैयार (8) दूसरों की कटु आलोचना न करना और उन पर अट्टहास न करना तथा उन्हें उचित सम्मान और प्रशंसा देना और उनकी बातों को अपने मन तक रखना (9) दूसरों के लिए अपनी सुख-सुविधा का भी त्याग करने के लिए उद्यत हो जाना।

अब यह तो सभी मानेंगे ही कि प्रेम ही शत्रु को मित्र बनाने के लिए एक मंत्र का काम करता है अथवा एक मनुष्य के मन को दूसरे मनुष्य के मन से स्वेच्छापूर्वक बाँधने के लिए सूत्र का काम करता है परन्तु मनुष्य में सच्चा और शुद्ध प्रेम तभी जागृत होता है जब वह देह और देह के स्वजन और सर्वस्व के ममत्व से ऊँचा उठकर प्रेम के सागर परमात्मा की प्रेमधारा से परिप्लावित होता है और स्वयं को प्रेमस्वरूप परमात्मा की सन्तान निश्चय करके प्रेमविभोर होकर दूसरों से मिलता-जुलता है। परन्तु परमात्मा से प्रेम करना और परमात्मा की सन्तान अर्थात् आत्माओं से भी

प्रेम करना, यह योग का ही तो एक अंग है। इसी प्रकार, दूसरों के साथ घुलमिल जाना भी तभी सम्भव होता है जब मनुष्य दूसरों के अवगुणों को न देख उसके गुणों को देखे और उनसे प्यार करे और उनसे ''आत्मा-आत्मा, भाई-भाई'' का नाता माने। पुनश्च, दूसरों से मेल-जोल कायम रखना तभी सम्भव होता है जब मनुष्य सदा अपने ही विचार को हठ-पूर्वक मनवाने वाला न हो और वह दूसरों की भी राय को उचित मान्यता दे तथा निराभिमानता-पूर्वक उनसे व्यवहार करे। ये सभी बातें तो योग द्वारा ही सम्भव होती हैं। योग द्वारा ही मनुष्य आपस में एकमत होते हैं। 'योग' का अर्थ ही है, मेल-मिलाप अथवा मिलकर एकीभाव को प्राप्त होना। फिर जो मन की सरलता और सच्चाई-सफ़ाई का गुण है, जो कि मित्रता में दृढ़ता लाने के लिए आवश्यक है, वह भी तो योगी में ही होता है। भोगी अथवा जिसमें काम, लोभ, स्वार्थ आदि वासनायें भरी हों उसके मन में सफ़ाई और सच्चाई कहाँ? और, जहाँ सच्चाई नहीं वहाँ सच्ची मित्रता कैसे?

इसके अतिरिक्त, मनुष्य के जीवन में पवित्रता और उसका शान्त स्वभाव ही तो उसे आकर्षणमूर्त बनाता है लेकिन शान्ति और पवित्रता भी मनुष्य के जीवन में तभी आती है जब वह शान्त स्वरूप परमात्मा की स्मृति में स्थित होता है और योग द्वारा अपने अपवित्र संस्कारों को धोता है। इसी प्रकार दूसरों को मित्र बनाने के लिए अन्य जिन आवश्यक योग्यताओं का उल्लेख किया गया है, वे भी योग द्वारा ही मनुष्य के जीवन में धारण होती हैं। योग ही मनुष्य में सच्चा सेवा-भाव, दूसरों के लिए त्याग आदि-आदि की भावनायें पैदा करता है। 'सहयोग' शब्द योग शब्द ही से तो बना है और योग-स्थित मनुष्य ही तो अपने जीवन का दूसरों के लिए प्रयोग भी करता है।